International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 7.150, Volume 06, No. 04(II), October - December, 2024, pp. 205-209

# पंचायती राज–संस्थाएँ : विकास क्रम का सर्वेक्षण

डॉ. दीपिका चौधरी*

**प्रस्तावना**

अतिथि भारत में वर्तमान स्थानीय स्वायत्त संस्थाएँ यद्यपि आधुनिक काल का विकास है तथापि अति प्राचीनकाल से ही हमारे देश में स्थानीय शासन की व्यवस्था रही है। वैदिक युग से अब तक स्थानीय स्वायत्त शासन भारतीय लोक–कल्याणकारी चिन्तन, नीतियों एवं कार्यक्रमों का महत्वपूर्ण वैचारिक पक्ष रहा है। हम भारत में स्थानीय स्वायत्त शासन के विकास के क्रम को निम्न कालों में विभक्त कर सकते है :–

**प्राचीनकाल में स्थानीय स्वशासन**

**मध्यकाल में स्थानीय स्वशासन**

**ब्रिटिश काल में स्थानीय स्वशासन**

**स्वतंत्र भारत में स्थानीय स्वशासन**

- **प्राचीनकाल में स्थानीय स्वशासन**

भारत में स्थानीय स्वशासन स्वायत्त शासन की संस्थाओं को प्राचीन काल से ही महत्व प्राप्त था एवं इन्हें प्रोत्साहन दिया जाता था। वैदिक युग में, जब नगरों का स्थान नगण्य था ग्राम शासन का महत्व अधिक था। इस युग में राज्य आकार में अधिक विशाल नहीं होते थे तथा उनकी राजधानी का आकार भी छोटा होता था। प्रत्येक गाँव में जनता की सभा होती थी और राजधानी के संपूर्ण राज्य की एक केन्द्रीय लोकसभा होती थी जिसे समिति कहा जाता था। राजा स्वामी होते थे लेकिन निरंकुश नहीं थे। सभा एवं समिति नामक संस्थाएँ उस नियंत्रण रखती थी। मनु–संहिता में राजा और गाँव के बीच प्रत्यक्ष संबंध की चर्चा मिलती है।

रामायण के अध्ययन से स्पष्ट हो सकता है कि उस समय प्रशासन पुर और जनपद दो भागों में विभक्त था। गाँवों की गणना जनपद में होती थी तथा वहाँ के निवासी जनपदा कहलाते थे। अयोध्या कांड के श्लोक द्वारा उद्धत किया है जिसमें महाराजा दशरथ के सामने यह निवेदन करने के लिए कहा गया कि पोर तथा जनपद करबद्ध होकर राम के राज्याभिषेक की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

महाभारत में शांतिपर्व के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि शासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम थी। उसके ऊपर क्रमशः दस, बीस, शत तथा सहस्र ग्राम समूहों की इकाईयाँ थी। ग्राम शासन का प्रमुख अधिकारी 'ग्रामिक' कहलाता था। अपने ग्राम तथा उसके निवासियों की स्थिति विशेषतः कठिनाईयों की सूचना वह अपने से श्रेष्ठ दस ग्राम अधिकारियों को देता था। ग्रामों के अतिरिक्त राज्य में कुछ छोटे–बडे नगर भी थे। नगरों का शासन अधिकारी 'स्वार्थचिंतक' कहलाता था।

* अतिथि सहायक आचार्य, राजकीय कन्या महाविद्यालय, कामाँ, डीग, भरतपुर, राजस्थान।

मनु द्वारा रचित मनुस्मृति में स्थानीय स्वायत्त शासन के व्यवस्थित स्वरूप पर बल दिया गया है तथा शासन की शक्तियों एवं कार्यों के विकेन्द्रीकरण के महत्व को स्पष्ट करते हुए मनु ने लिखा है कि राज्य में शक्तियों का विकेन्द्रीकरण होना चाहिए तथा प्रजा में स्वशासन की प्रवृत्ति होनी चाहिए। मनु ने इस हेतु राजा को एक पृथक मंत्री को नियुक्त कर उत्तरदायित्व सौंपने का परामर्श दिया। शासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम को माना है। प्रत्येक ग्राम के प्रशासन के लिए उत्तरदायी अधिकारी के लिए मनु ने 'रक्षक' शब्द का प्रयोग किया है। रक्षक का कार्य प्रजा से कर एकत्रित करना, ग्राम में शान्ति एवं व्यवस्था बनाये रखना था। इस प्रकार मनु ने न केवल स्थानीय शासन संगठन के स्वरूप का व्यवस्थित रूप से उल्लेख किया है। प्रत्येक इकाई का दूसरी इकाई से संबंधों का स्पष्ट निर्धारण भी किया है। मनु–स्मृति से ज्ञात होता है कि ग्राम का मुखिया 'ग्रामणी' 'ग्रामिक' 'ग्रामाद्यपति' होता था।

कौटिल्य ने ऐसी स्थानीय संस्थाओं का उल्लेख किया है जो प्राय राज्य के हस्तक्षेप से मुक्त रहती थी। अर्थशास्त्र में प्रतिपादित किया है कि राज्य को ऐसे गाँव की रचना करनी चाहिए जिसमें कम से कम सौ परिवार तथा अधिक से अधिक पाँच सौ परिवार रहते हैं। कौटिल्य ने राजा सुझाव दिया कि गाँव की संगठन व्यवस्था इस प्रकार की जाये कि प्रत्येक आठ सौ गाँवों के केन्द्र में एक संग्रहण और चार सौ गाँवों के केन्द्र में एक द्रोण मुख दो सौ गाँवों के केन्द्र में एक कार्वटिक तथा सौ गाँवों के समूह के केन्द्र में एक स्थानीय नामक इकाई की स्थापना की जानी चाहिए।

मौर्यकाल में 'ग्राम' शासन की सबसे छोटी इकाई थी तथा ग्राम की जनता स्वयं अपने मुखिया का चुनाव करती थी जिसे ग्रामिक कहा जाता था। चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन काल में शासन शक्तियों का विकेन्द्रीकरण किया गया था। मेगस्थनीज ने उस समय उस समय के पाटलीपुर नगर के शासन के वर्णन में लिखा है कि नगर का कार्यभार पाँच–पाँच सदस्यों वाली छः समितियों में विभक्त था। इन समितियों का कार्य उचित बाट एवं माप, व्यापार तथा वाणिज्य का निरीक्षण, जन्म एवं मृत्यु के अभिलेख रखना विदेशियों का स्वागत सत्कार तथा बिक्रिकर की वसूली आदि था।

- **मध्यकालीन भारत में स्थानीय स्वशासन**

मध्यकालीन भारत को सल्तनत एवं मुगलकाल में विभक्त कर सकते है :–

- **सल्तनत काल (1200–1526)**
- **मुगलकाल (1526–1707)**

इतिहास के दृष्टिकोण से मध्यकाल का प्रारंभ भारत में दिल्ली के सल्तनत शासन काल में माना जाता है। इस अवधि में भी भारत में स्थानीय शासन संस्थाएँ अस्तित्व में थी तथा ग्राम शासन की सबसे छोटी इकाई था। दिल्ली सुल्तान इस तथ्य को जानते थे कि विशाल साम्राज्य पर केन्द्र का सीधा नियंत्रण करना कठिन होगा। अतः उन्होनें अपने साम्राज्य को प्रान्तों में विभक्त किया जिसे विलायत कहा जाता था। विलायत (प्रान्त) के प्रमुख को अमीर अथवा काली कहा जाता था। उसकी स्थिति अर्द्ध स्वतंत्र शासक के समान होती थी। वित्त का प्रबंध, करों का संचालन तथा न्यायिक अधिकारियों का चयन करना उसका अधिकार था। विलायत की छोटी इकाईयों को 'शिक' में विभाजित किया गया था तथा शिक के प्रमुख को शिकदार कहा जाता था। शिक के बाद परगना छोटी इकाई थी। परगना का मुखिया चौधरी तथा लेखाकार कानूनगों कहलाता था। परगना के बाद इकाई मोगा (गाँव) थी जिसके मुखिया को मुकदद्म तथा लेखाकार को पटवारी कहा जाता था।

मुगलकाल में अकबर ने संपूर्ण प्रशासन को राजस्व व्यवस्था के लाभ हेतु वैज्ञानिक आधार पर विभाजित किया था। अबुल फजल की रचना 'आईने अकबरी' से स्पष्ट होता है कि दहसाला व्यवस्था की स्थापना के समय बादशाह ने साम्राज्य को प्रान्तों में विभक्त किया था। प्रान्तों को सूबा कहा जाता था। सूबे के प्रमुख को सूबेदार या सिपहसालार कहा जाता था। सूबेदार का कार्यक्षेत्र तथा उसके उत्तरदायित्व काफी विस्तृत होते थे। यह

लोगों के कल्याण के लिए उत्तरदायी था। अतः वह कृषि, सडकों के निर्माण, बागवानी, सराय चिकित्सालय आदि सार्वजनिक हित के कार्यों के प्रति जागरूक रहता था।

- **ब्रिटिशकाल में भारत में स्थानीय स्वशासन**

ब्रिटिश शासन काल में स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं का पूर्ववर्ती स्वरूप नष्ट हो गया। स्थानीय शासन संस्थाएँ शहरों एवं कस्बों तक ही प्रभावी रही। ब्रिटिश शासन के दौरान ही भारत मे पूर्व में विद्यमान स्थानीय स्वायत्त शासन संस्थाओं के इतिहास को ब्रिटिश सरकार की नीतियों के उददे्श्य एवं प्रयोजन की दृष्टि से निम्नांकित भागों में विभक्त किया जा सकता है –

- **1687 से 1881 तक**

ब्रिटिश शासन काल में सन् 1687 में 'मद्रास नगर निगम' की स्थापना ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा की गई। अतः भारत में 1687 में ब्रिटिश काल में स्थानीय शासन संस्थाओं का आरंभ माना जाता है। मद्रास नगर निगम को लोक सेवाओं के लिए उत्तरदायी बनाया गया तथा दीवानी एवं फौजदारी मामलों का अभिलेख न्यायलयय भी बनाया गया। सन् 1726 में बम्बई तथा कलकत्ता नगरपालिका निकायों की स्थापना की गई। सन् 1773 में रेग्यूलेटिंग एक्ट के अन्तर्गत प्रेसीडेन्सी नगरों मे जस्टिस ऑफ पीस की नियुक्ति की गई, जिनका कार्य अपने नगरों की सफाई एवं स्वास्थय व्यवस्थाओं का पर्यवेक्षण करना था। 1793 में अधिकार पत्र अधिनियम द्वारा प्रेसीडेन्सी नगरों मे नगर प्रशासन की स्थापना का उत्तरदायित्व गर्वनर जनरल को सौंप दिया गया। 1870 में बंगाल चौकीदार अधिनियम द्वारा बंगाल परम्परागत ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं को पुनजीर्वीत किया गया। 1981 तक पाँच में से चार महानगर पालिकाएँ पूर्णतः नामित संस्थाएँ थी।

- **1882 से 1919 तक**

सन् 1880 में लार्ड रिपन भारत के वायसराय बने। उन्होनें 14 स्थानीय स्वशासन संबंधी अनेक महत्वपूर्ण अनुशंसाएँ की। स्थानीय स्वशासन की दृष्टि से लार्ड रिपन के शासनकाल में 1882 का प्रस्ताव अत्यंत महत्वपूर्ण था। इस प्रस्ताव के द्वारा संपूर्ण भारत के लिए स्थानीय स्वशासन संस्थाओं की आधारभूत रूपरेखा प्रस्तुत की गई। लार्ड रिपन का विचार था कि स्थानीय शासन संस्थाओं के माध्यम से प्रशासन को उत्तम बनाने के साथ ही इन्हें राजनीतिक लोकप्रिय शिक्षण का साधन बनाना भी था। ग्रामीण प्रदेशों में इस प्रस्ताव के माध्यम से स्थानीय बोर्डों की स्थापना की गई। प्रत्येक जिले में जिला उप–विभाग, तालुका अथवा तहसील बोर्ड बनाने की आज्ञा जारी की गई। स्थानीय संस्थाओं को निश्चित कार्य एवं आय के साधन आवंटित किये गये। इन संस्थाओं में गैर सरकारी सदस्यों की संख्या अधिक रखी गई। इन संस्थाओं में सरकारी हस्तक्षेप कम करने हेतु अपेक्षा की गई कि सरकार इनका मार्गदर्शन करेगी। आज्ञा नहीं देगी। बोर्ड के अध्यक्ष का चयन बोर्ड के सदस्यों द्वारा ही किया जाये। अतः 1883–85 के मध्य अनेक प्रान्तों में स्थानीय स्वशासन अधिनियम पारित हुए।

लार्ड ने सभी उदारवादी नीतियों का विरोध किया तथा सभी स्थानीय संस्थाओं पर सरकारी नियंत्रण को सुदृढ कर लिया। 1890 ई. में विकेन्द्रीकरण के प्रश्न पर रॉयल कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में इस तथ्य का प्रतिपादन किया कि धन के अभाव के कारण स्थानीय संस्थाएँ प्रभावशाली तरीके से काम नहीं कर पा रही है। आयोग ने ग्राम पंचायतों, उप जिला बोर्डों को सशक्त बनाने हेतु अनेक महत्वपूर्ण सुझाव दिये। 1915 में भारत सरकार के प्रस्तावों में इन सुझावों पर प्रतिक्रिया व्यक्त की गई। 1918 में मोन्टफोर्ड प्रस्ताव में सुझाव दिया गया कि स्थानीय संस्थाओं को प्रतिनिधि संस्था बनाया जाये। उन पर सरकार का नियंत्रण कम से कम हो तथा उन्हें गलतियों से सीखने का अवसर दिया जाये। इन प्रस्तावों के आधार पर ही 1919 के भारत सरकार अधिनियम में स्थानीय संस्थाओं के विकास व उनमें जनसहभागिता की व्यवस्था की गई।

- **सन् 1920–1935 तक**

'भारत सरकार अधिनियम' 1919 का क्रियान्वन सन् 1920 में हुआ। इस समय स्थानीय संस्थाओं के विकास में महत्वपूर्ण प्रगति हुई। इस अधिनियम के द्वारा स्थानीय शासन हस्तांतरिक विशयों के अंतर्गत रखा

गया। अतः स्थानीय शासन संस्थाएँ प्रान्तों के निर्वाचित मंत्रियों के अधीन हो गयी। केन्द्र सरकार ने इस विषयपर स्थानीय प्रान्तीय सरकारों को निर्देश देने बन्द कर दिये तथा सभी प्रान्तों को अपनी–अपनी आवयश्कतानुसार स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं को विकसित करने की अनुमति प्राप्त हो गयी। प्रत्येक प्रान्त में स्थानीय स्वायत्त शासन विभाग स्थापित किया गया। स्थानीय संस्थाओं का गठन का आधार सामान्यतः पूर्ण रूप से निर्वाचन को रखा गया तथा निर्वाचन मंडल का भी विस्तार किया गया। इन संस्थाओं के अध्यक्ष पद पर गैर सरकारी व्यक्ति को नियुक्त करने का प्रावधान स्वीकृत किया गया। स्थानीय संस्थाओं को पहले से अधिक प्रशासनिक एवं वित्तिय शक्तियाँ दी गई। स्थानीय करों एवं प्रान्तीय करों की सूची को पृथक कर दिया गया।

1919 के अधिनियम से स्थानीय शासन तो हस्तांतरित विशय के अन्तर्गत आ गया किन्तु वित्त आरक्षित विशय था। अतः निर्वाचित मंत्री इस क्षेत्र में विशेष प्रगति नहीं कर सके। सन् 1930 में साइमन आयोग ने स्थानीय स्वशासन की कियान्विति का मूल्यांकन किया तथा अपने प्रतिवेदन में इस तथ्य को प्रतिपादित किया कि उत्तर प्रदेश, बंगाल व मद्रास के अतिरिक्त अन्य नगरीय निकायों तथा ग्राम पंचायतों के क्षेत्र में इन संस्थाओं में कोई उन्नति देखने को नहीं मिली।

- **सन् 1935 से 1947 तक**

1935 के 'भारत सरकार अधिनियम' में प्रान्तीय स्वायत्ता का प्रावधान किया गया जिसका स्थानीय शासन संस्थाओं पर सकारात्मक प्रभाव पडा तथा इन संस्थाओं को अधिक गति मिली। निर्वाचित सरकार का वित्त पर नियंत्रण था। अतः वह इन संस्थाओं को पहले की तुलना में अधिक धन उपलब्ध करा सकती थी। प्रान्तीय एवं स्थानीय करों के बीच जो विभाजन था उसे समाप्त कर दिया गया। स्थानीय स्वायत्त शासन के महत्व को स्वीकार करते हुए प्रजातंत्र की आधारशिला के रूप में इसे स्वीकृति दी गई तथा लगभग सभी प्रान्तों में स्थानीय संस्थाओं को अधिक कार्यभार दे दिया गया। विशेषतः नगर पालिकाओं तथा पंचायतों के कार्यक्षेत्र में विस्तार हुआ। पं. जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभ भाई पटेल तथा पुरूषोत्तम दास टंडन जैसे महान राजनीतिज्ञों ने स्वायत्त शासन संस्थाओं में कार्य किया किन्तु इन संस्थाओं की कर लगाने से पूर्व प्रान्तीय सरकारों से आज्ञा लेनी आवश्यक थी तथा चुंगी कर बढाने, व्यापारों, व्यवसायों एवं विकेन्द्रीकरण आयोग की सिफारिशों को अनदेखा किया गया। सन् 1939 में प्रान्तीय मंत्रीमण्डलों द्वारा त्याग पत्र दिये जाने से स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं का विकास अवरूद्ध हो गया।

ब्रिटिश शासन काल में भारत में स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं के स्वरूप में मौलिक परिवर्तन आया। स्थानीय स्वायत्त संस्थाएँ स्पष्टतः दो भागों में विभक्त की, शहरी एवं ग्रामीण। स्वतंत्र भारत में स्थानीय स्वायत्त के जिस रूप को अपनाया गया वह ब्रिटिश शासन की विरासत माना जाता है। ब्रिटिश शासन काल में स्थानीय संस्थाओं को स्थापित करने का लक्ष्य वस्तुतः साम्राज्यवादी वित्तिय बोझ को हल्का करना था। न कि भारत में स्थानीय संस्थाओं का विकास करना। अतः ब्रिटिश सरकार ने जिला स्तर पर स्थित प्रान्तीय सरकार के विभिन्न विभागों के माध्यम से स्थानीय प्रशासन चलाने की नीति अपनाई।

- **स्वतंत्र भारत में स्थानीय स्वायत्त शासन का विकास**

सन् 1947 में भारत के स्वतंत्र होने पर आशा की गयी कि लोकतंत्र को सुदृढ करने हेतु लोकतंत्र का विकेन्द्रीकरण किया जायेगा तथा स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं के विकास को नवीन दिशा एवं गति मिलेगी। गाँधी जी गाँव को शासन की मूल इकाई बनाना चाहते थे तथा वे पंचायतीराज को लोकतंत्र के विकेन्द्रीकरण हेतु अनिवार्य मानते थे। गाँधी जी की मान्यता था कि यदि हम चाहते हैं और मानते हैं कि गाँवों को न केवल जीवित रहना चाहिए अपितु उनको बलवान तथा समृद्ध बनाना चाहिए तो हमारे दृष्टिकोण में गाँव की प्रधानता होनी चाहिए। पंडित जवाहरलाल नेहरू का भी विचार था कि लोकतंत्र का विकेन्द्रीकरण ग्रामीण स्तर पर होना चाहिए किन्तु दोनों ने पंचायतीराज का जो प्रतिमान प्रस्तुत किया वह मूलभूत रूप से भिन्न था। भारत में स्थानीय स्वायत्त शासन का वर्तमान ढाँचा ब्रिटिश शासन की की देन है। यहाँ भी स्वायत्त शासन को बहुत वही रूप दिया गया जो ब्रिटेन में प्राप्त है। ब्रिटेन में स्थानीय प्रशासन के दो क्षेत्र शहरी एवं ग्रामीम भारत में तदानुसार

स्थानीय स्वायत्तशासी संस्थाएँ मोटे तौर पर दो वर्गों में बाँटी जा सकती है– शहरी और ग्रामीण। बडे नगरों में इन्हें निगम कहा जाता है और मध्यम तथा छोटे शहरों में नगरपालिका। कई राज्यों में ग्रामीण क्षेत्रों में त्रि–स्तरीय प्रशासन लागू किया गया है जिसे पंचायतीराज कहते हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सत्ता विकेन्द्रीकरण की दिशा में उठाया गया। महत्वपूर्ण कदम पंचायतीराज की स्थापना रहा है। राजस्थान वह पहला राज्य है जिसे देश में सर्वप्रथम पंचायतीराज की स्थापना का गौरव प्राप्त है। 2 अक्टूबर 1959 का गाँधी जयन्ती के अवसर पर तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा नागौर में दीप–प्रज्जवलित कर पंचायतीराज की स्थापना की गयी थी। आरंभ में गाँव के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास में पंचायतीराज में व्यवस्थाएँ शिथिल होने लगीं और अपने अंतिम चरण में तो यह मृत प्रयाय सी हो गयी। दम तोडती इस पंचायतीराज व्यवस्था में फिर से प्राण–प्रतिष्ठा की आवयश्कता विशेष हो गयी। इसी उददेश्य से संसद में संविधान संशोधन विधेयक लाया गया जो संविधान के 73 वें संशोधन अधिनियम, 1992 के रूप में पारित हुआ। यह संशोधन अधिनियम 2 अप्रैल 1993 से संपूर्ण भारत में लागू किया गया।

## संदर्भ ग्रन्थ सूची


1. के.पी. जायसवाल – हिन्दु पॉलिटी, प्र. 17
2. डॉ. कुमारी दीक्षीत – रामायण में राज्य व्यवस्था, अर्चना
3. प्रकाशन लखनऊ, 1971 पृ. 115
4. मनु–स्मृति, (7/115/116)
5. याज्ञवल्क्य स्मृति (2/67)
6. शुक्रनीति (2/270–275)
7. मनु–स्मृति (8/41–42)
8. नारद स्मृति (20/21)
9. वशिष्ट स्मृति (7/19)
10. मनु–स्मृति (8/221)
11. शामशास्त्री–कौटिल्याज अर्थशास्त्र, प्रिन्टरर्स प्रेस, मैसूर, 1956 पृ. 45
12. घनश्यामदत्त शर्मा–मध्यकालीन भारतीय सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक संस्थाएँ, राजस्थान. हिन्दी ग्रन्थ अकादमिक, जयपुर पृ. 21–24
13. डॉ. एस.आर. माहेश्वरी–भारत में स्थानीय शासन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल आगरा,1990, पृ. 16–17
14. डॉ. बी.एल. ग्रोवर एवं यशपाल–आधुनिक भारत का इतिहास, एस.चाँद एण्ड कंपनी लि. नई दिल्ली, 1990, पृ. 277
15. जे.सी. जौहरी भारतीय राजनीति, विशाल पब्लिकेशन, आगरा 1986, पृ. 505–508
16. एन.एम रवेनी बनाम मानिक राव पाटिन (ए.आई.आर 1977 एस.सी 2171)
17. वही, पृ. 41–45


❖◆❖